# पुरुषार्थ
# Purushartha

**Dr. Manoj Kumar**
**Assistant Professor (Guest)**
**Dept. of A.I.H. & Archaeology,**
**Patna University, Patna-800005**
**Email- dr.manojaihcbhu@gmail.com**
**Mobile- 7007236005**
**P.G. / M.A. IV$^{th}$ Semester,**
**Paper - Ancient Indian Society (E.C.)**
**Dept. of A.I.H. & Archaeology. Patna University, Patna**

प्राचीन भारत में मानव के जीवन को जिस प्रकार चार आश्रमों में बाँटा गया ठीक उसी प्रकार मनुष्य के कर्त्तव्यों को चार भागों में विभक्त किया गया ये चार कर्त्तव्य थे- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। वस्तुतः ये चारों कर्त्तव्य जीवन के चार उद्देश्य थे। बृहदारण्यक में लिखा है कि मनुष्य को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने का उपाय करना चाहिए ताकि उसे पुनः जन्म न लेना पड़े। जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने के उसे चार पुरुषार्थों का पालन करना चाहिए। इन चारों पुरुषार्थों का पालन करते हुए मनुष्य अपने समस्त ऋणों से उऋण होकर मुक्ति पा सकता है।

हिन्दू धर्म में पुरुषार्थ से तात्पर्य मानव के लक्ष्य या उद्देश्य से है **'पुरुषैर्थ्यते इति पुरुषार्थः'** । पुरुषार्थ = पुरुष+अर्थ = अर्थात मानव को 'क्या' प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रायः मनुष्य के लिये वेदों में चार पुरुषार्थों का नाम लिया गया है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसलिए इन्हें **'पुरुषार्थ चतुष्टय'** भी कहते हैं । महर्षि मनु पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतिपादक हैं। जिसकी व्याख्या उन्होंने मनुस्मृति में दिया है । चार्वाक दर्शन केवल दो ही पुरुषार्थ को मान्यता देता है- अर्थ और काम। वात्स्यायन भी मनु के पुरुषार्थ-चतुष्टय के समर्थक हैं किन्तु वे मोक्ष तथा परलोक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम पर आधारित सांसारिक जीवन को सर्वोपरि मानते हैं। योगवासिष्ठ के अनुसार सद्जनो और शास्त्र के

उपदेश अनुसार चित्त का विचरण ही पुरुषार्थ कहलाता है।| भारतीय संस्कृति में इन चारों पुरूषार्थो का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः इन पुरूषार्थो ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अद्‌भुत समन्वय स्थापित किया है ।

**धर्म** : धर्म भारतीय संस्कृति का मूल है , शास्त्रों में धर्म के तीन प्रकार बताए गए है – सामान्य धर्म विशिष्ट धर्म आपद्धर्म मनुस्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताए गए है : धैर्य, क्षमा , संयम, चोरी करने से बचना (अस्तेय) , आंतरिक और बाह्य शुद्धि, बुद्धि, विद्या, सत्य बोलना, क्रोध से बचना । कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि :

**यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (कणाद, वैशेषिकसूत्र, १.१.२)** 'अभ्युदय' से लौकिक उन्नति का तथा 'निःश्रेयस' से पारलौकिक उन्नति एवं कल्याण का बोध होता है।महाभारत' के अनुसार धर्म वही है जो किसी को कष्ट नहीं देता। धर्म में लोककल्याण की भावना निहित होती है । मनु के अनुसार जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है, धर्म उस व्यक्ति की सदैव रक्षा करता है। धर्म का अर्थ बहुत व्यापक है। प्राचीन ग्रन्थों में यह माना गया है कि जीवन को संयमित एवं नियमबद्ध ढंग से जीने का मार्ग धर्म है। धर्म का पालन करते हुए मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। वैशेषिक सूत्र के अनुसार- "धर्म वह है जिससे लौकिक उन्नति हो और पारलौकिक कल्याण हो।" महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म के सम्बन्ध में लिखा है कि-"जिससे समूचे समाज का कल्याण हो, वही धर्म है।" धर्म के अन्तर्गत मनुष्य का आचारण, संयम, विचार, कर्त्तव्य, दायित्व तथा सम्पूर्ण जीवन आता था। धर्म का पालन करते हुए मनुष्य व्यक्ति, समाज तथा देश की उन्नति के साथ-साथ प्राणिमात्र के उद्धार के प्रयास करता था। धर्म का पालन करना प्रत्येक मनुष्य के लिए, प्रत्येक आश्रम -व्यवस्था में अनिवार्य था । ब्रह्मचर्य- आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्थी को विद्यार्थी धर्म का पालन करना होता था इसके अन्तर्गत ईश्वर की आराधना के साथ ही गुरु की सेवा, आश्रम की सेवा, विद्याध्ययन, भिक्षाटन तथा आश्रमवास प्रमुख था। गुरु की आज्ञा का पालन करना विद्यार्थी का कर्त्तव्य माना जाता था।

गृहस्थ आश्रम में एक गृहस्थ के लिए यह आवश्यक था कि वह ईश्वर की उपासना के अतिरिक्त दान एवं भिक्षा दे, सन्तों एवं मुनियों की सेवा करे, आश्रमवासियों की सेवा करे, अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य एवं सेवकों का भरण-पोषण करे, विवाह करे, सन्तानोत्पत्ति करे, धनार्जन करे, पंच महायज्ञ करे तथा जनकल्याण के कार्य करता रहे। धनार्जन को छोड़ कर शेष कर्त्तव्यों का पालन स्त्रियों के लिए भी अनिवार्य था । वानप्रस्थ में प्रवेश कर चुके व्यक्ति के लिए, चह चाहे स्त्री हो या पुरुष हो, धर्माचरण आवश्यक था। ऐसे व्यविति के लिए आवश्यक था कि वह ईश्वर की आराधना करे, विद्याध्ययन के इच्छुक छात्रों को विद्यादान करे। सदाचार, संयम तथा लालचविहीन रहे। संन्यास-आश्रम में प्रवेश कर चुके व्यक्ति के लिए संन्यास धर्म का पालन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना आवश्यक था संन्यास धर्म का अर्थ था कि वह अपने परिवार के मोह को त्याग कर, सम्पत्ति के मोह को त्याग कर, एक स्थान पर अधिक दिन तक न रहते हुए मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे ।

**अर्थ :** भारतीय संस्कृति में अर्थ का क्या महत्व है? अर्थ का सीधा संबंध जीवनयापन करने में सहायक भौतिक साधनों से है जो उसे सुख और समृद्धि प्रदान करते है । अर्थ का तात्पर्य है : धन ।

**मनुष्याणां वृत्तिः अर्थः । (कौटिल्यीय अर्थशास्त्र)**

अर्थ के बिना सांसारिक कार्य चल ही नहीं सकता। मनुष्य को जीवन व्यतीत करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है तथा वे जिस रूप में प्राप्त होते हैं उसे अर्थ कहा जाता है । जीवन की प्रगति का आधार ही धन है। उद्योग-धंधे, व्यापार, कृषि , धार्मिक कार्यों आदि सभी कार्यो के लिए, धन की ही आवश्यकता होती है। आचार्य कौटिल्य त्रिवर्ग में अर्थ को प्रधान मानते हुए इसे धर्म और काम का मूल कहा है। भूमि, धन, पशु, मित्र, विद्या, कला व कृषि सभी अर्थ की श्रेणी में आते हैं। आचार्य वात्स्यायन 'अर्थ' को परिभाषित करते हुए विद्या, सोना, चांदी, धन, धान्य गृहस्थी का सामान, मित्र का अर्जन एवं जो कुछ प्राप्त हुआ है या अर्जित हुआ है उसकी वृद्धि , सब अर्थ है। **(विद्या भूमि हिरण्य पशुधान्य भाण्डोपस्कर मित्त्रादि नामार्जन मर्जितस्य विवर्धनमर्थः।)**

धर्म को अर्थ से श्रेष्ठ माना गया है ,कारण धर्म से विमुख होकर अर्थोपार्जन में संलग्न मनुष्य ना केवल प्राकृतिक सम्पदा का विवेकहीन दोहन करके संसार के पर्यावरण संतुलन को नष्ट करता है बल्कि दूसरी ओर अपने क्षणिक लाभ के लिए अपने व समाज के लिए अनेकानेक रोगों व कष्टों को जन्म देता है। अतः बिना धर्म को समझे अर्थ की प्राप्ति नही करनी चाहिए अन्यथा प्राप्त किया गया वह धन समाज मे अनैतिकता को बढ़ावा देगा । मनुस्मृति के अनुसार ईमानदारी से किया गया अर्थोपार्जन पुण्य का मार्ग प्रशस्त करता है जबकि चोरी, डकैती, ठगी, शोषण आदि से प्राप्त किया गया धन मनुष्य को पाप का भागी बनाता है। वात्स्यायन के अनुसार अर्थ मानव को जीवन के विभिन्न कर्मों से जोड़ता है। ब्रह्मचर्य- आश्रम में रहते हुए मनुष्य को अर्थोपाजेन नहीं करना पड़ता था। उस काल में उसे अपने गुरु के आश्रम की व्यवस्था तथा भिक्षाटन पर निर्भर रहना पड़ता था। गृहस्थाश्रम में अर्थोपार्जन महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य होता था । यह अर्थोपार्जन धन अथवा वस्तु अथवा धन और वस्तु दोनों के रूप में होता था। अर्थ गृहस्थी के संचालन के लिए आवश्यक होता था। वानप्रस्थ में अर्थोपाज्जन से कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। इस अवस्था में व्यक्ति भिक्षाटन कर के जीवनयापन करता था।

**काम :** काम का अर्थ है : इच्छा । शास्त्रों के अनुसार , मनुष्य की इच्छाओं की तृप्ति आवश्यक है , यदि इनका दमन किया जाए तो यह मोक्ष प्राप्ति में बाधक है ।आत्मा बुद्धि के द्वारा विषयों को भोगता हुआ सुख को अनुभव करता है। जो सुख है, सामान्य रूप से वही काम है। दूसरा मत यह है कि , काम का अर्थ है : कर्त्तव्य । काम मनुष्य का यह कर्त्तव्य माना गया है कि वह मानव जाति को निरन्तर आगे बढ़ाता रहे। वैदिक, बौद्ध एवं जैन किसी भी परम्परा में ब्रह्मचारियों के लिए काम-भावना को उचित नहीं माना गया । ब्रह्मचर्य- आश्रम में रहते हुए मनुष्य को काम-भावना का विचार मन में न लाते हुए विद्याध्ययन में ध्यान देना होता था। ब्रह्मचर्य- आश्रम की अवधि समाप्त होने पर व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था तथा इसी समय वह विवाह करता था। विवाहोपरान्त वह सन्तान पैदा करता था जिससे वंश आगे चल सके। ब्रह्मचये का भाँति वानप्रस्थ एवं संन्यास-

आश्रम में भी काम-भावना का निषेध था। गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष दोनों को कामरूपी पुरुषार्थ का पालन करना होता था।

**मोक्ष :** प्राचीनकाल में यह विचार बहुत अधिक प्रचलन में था कि मनुष्य का जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता है तब तक वह जन्म-मरण के बन्धन में बँधा रहता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए मनुष्य को चारों आश्रमों एवं पुरुषार्थों का ईमानदारी से पालन करना चाहिए। उसे ईश्वर की आराधना करना चाहिए, धर्मग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए, संयम तथा सदाचार से जीवन बिताना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार समाज, परिवार तथा अपने आस-पास के व्यक्तियों के त्रण से उकण हुए बिना मा्न हीं मिल सकता है। चार पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्त करने के साधन मान क थे। जबकि मोक्ष को जीवन का उद्देश्य माना गया । वात्स्यायन ने धर्म, अर्थ आर य को मानव-जीवन का आवश्यक अग बताया है। वात्स्यायन के अनुसार धर्म, अर्थ तथा काम का पालन करते हुए ही मोक्ष पाया जा सकता था। सांसारिक बंधनो से मुक्त होना ही मोक्ष है । आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ है जीवन-मरण से मुक्त होकर परमात्मा से मिलन ही मोक्ष है जबकि समाज के दृष्टि से मनुष्य जब गृहस्थ धर्म का भार अपने पुत्र और पौत्रों को सौप देता है तब उसे किसी भी प्रकार के सामाजिक दायित्वों की ज़िम्मेदारी उठाने से वह मुक्त हो जाता है और यह अवस्था मोक्ष (सामाजिक कार्यों से मुक्ति) कहलाता है । अतः अब वह ईश्वर चिंतन में अपना जीवन व्यतीत करने हेतु स्वतंत्र हो जाता है । इस पुरुषार्थ का सम्बन्ध सन्यास आश्रम से जोड़ा जा सकता है ।

अतः भारतीय परम्परा में जीवन का ध्येय पुरुषार्थ को माना गया है। धर्म का ज्ञान होना जरूरी है तभी कार्य में कुशलता आती है कार्य कुशलता से ही व्यक्ति जीवन में अर्थ अर्जित कर पाता है। काम और अर्थ से इस संसार को भोगते हुए मोक्ष की उसे कामना करनी चाहिए ।